International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 13 Issue 3 || March 2024 || PP. 80-87

भगवाकरण और धर्मनिरपेक्षता : सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारत के संवैधानिक मूल्यों के बीच टकराव

घनश्याम बीठू
सहायक आचार्य, दर्शनशास्त्र
राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर

सार
भारत में भगवाकरण और धर्मनिरपेक्षता के बीच टकराव सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और संवैधानिक आदर्शों के बीच बहुआयामी संघर्ष का प्रतीक है। भगवाकरण, जो हिंदू सांस्कृतिक और धार्मिक सिद्धांतों के प्रचार का प्रतीक है, धीरे-धीरे भारतीय समाज और शासन के विभिन्न पहलुओं में व्याप्त हो गया है। यह विचारधारा भारत के सामाजिक और राजनीतिक ढांचे में हिंदू धर्म की प्रधानता पर जोर देना चाहती है, जो अक्सर धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता पर हावी होती है। इसके विपरीत, भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता, धार्मिक समानता और राज्य के मामलों से धर्म को अलग करने की वकालत करती है, जिसका लक्ष्य लोकतांत्रिक संरचना के भीतर विविध धार्मिक पहचानों के सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व को बनाए रखना है। हालाँकि, धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों के व्यावहारिक कार्यान्वयन को चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, आलोचकों का तर्क है कि भारतीय राज्य अपने धर्मनिरपेक्ष लोकाचार को बनाए रखने में लड़खड़ा गया है। भगवाकरण और धर्मनिरपेक्षता के बीच तनाव शिक्षा, राजनीति और सार्वजनिक चर्चा में व्याप्त है, क्योंकि नीतियां और आख्यान तेजी से हिंदू-केंद्रित दृष्टिकोणों का समर्थन कर रहे हैं, जो संभावित रूप से धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को हाशिए पर धकेल रहे हैं। यह टकराव भारतीय पहचान और भारतीय राज्य के आधारभूत सिद्धांतों के बारे में बुनियादी पूछताछ उठाता है। क्या भारत भगवाकरण के प्रभुत्व के साथ अपनी समृद्ध सांस्कृतिक और धार्मिक छवि का सामंजस्य बिठा सकता है? भारतीय राज्य सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की आकांक्षाओं को समायोजित करते हुए धर्मनिरपेक्षता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को कैसे बरकरार रख सकता है? समकालीन भारतीय समाज और राजनीति को आकार देने वाली बदलती गतिशीलता को समझने के लिए इन सवालों पर गहराई से विचार करना जरूरी है।

मुख्य शब्द: *धर्मनिरपेक्षता, भगवाकरण, राष्ट्रवाद,*

परिचय

भारत में भगवाकरण और धर्मनिरपेक्षता के बीच टकराव सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और संवैधानिक सिद्धांतों के एक जटिल अंतर्संबंध का प्रतिनिधित्व करता है। भगवाकरण, एक शब्द जो अक्सर हिंदू सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों के प्रचार से जुड़ा होता है, ने भारतीय समाज और शासन के विभिन्न पहलुओं को तेजी से प्रभावित किया है। यह विचारधारा अक्सर धार्मिक और सांस्कृतिक बहुलवाद की कीमत पर, भारत के सामाजिक-राजनीतिक ढांचे में हिंदू धर्म के प्रभुत्व का दावा करना चाहती है।

इसके विपरीत, भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता, सभी धर्मों की समानता और राज्य से धर्म को अलग करने की वकालत करती है। यह एक लोकतांत्रिक समाज के ढांचे के भीतर विविध धार्मिक और सांस्कृतिक पहचानों के सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व को सुनिश्चित करना चाहता है। हालाँकि, धर्मनिरपेक्ष आदर्शों के कार्यान्वयन को चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, आलोचकों का तर्क है कि भारतीय राज्य व्यवहार में अपने धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों को बनाए रखने में अक्सर विफल रहा है।

भगवाकरण और धर्मनिरपेक्षता के बीच तनाव शिक्षा, राजनीति और सार्वजनिक चर्चा सहित विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होता है। शिक्षा और ऐतिहासिक व्याख्याओं में हिंदू-केंद्रित आख्यानों को बढ़ावा देने वाली नीतियों और पहलों के साथ-साथ राजनीति में राष्ट्रवादी बयानबाजी के उदय ने धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के हाशिए पर जाने और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के क्षरण के बारे में चिंताएं बढ़ा दी हैं।

यह टकराव भारतीय पहचान की प्रकृति और भारतीय राज्य के मूलभूत सिद्धांतों के बारे में बुनियादी सवाल उठाता है। क्या भारत भगवाकरण के बढ़ते प्रभाव के साथ अपनी विविध सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत को समेट सकता है? सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की आकांक्षाओं को संबोधित करते हुए भारतीय राज्य धर्मनिरपेक्षता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता कैसे बरकरार रख सकता है? समकालीन भारतीय समाज और राजनीति को आकार देने वाली गतिशीलता को समझने के लिए इन सवालों की खोज करना महत्वपूर्ण है।

सांस्कृतिक प्रभुत्व बनाम बहुलवाद:

भगवाकरण के समर्थक राष्ट्रीय पहचान को आकार देने में हिंदू संस्कृति और परंपराओं की प्रधानता के लिए तर्क देते हैं, जिससे संभावित रूप से अल्पसंख्यक संस्कृतियों और धर्मों को हाशिए पर धकेल दिया जाता है। धर्मनिरपेक्षतावादी एक बहुलवादी समाज की वकालत करते हैं जो भारत के विविध सांस्कृतिक और धार्मिक ताने-बाने का सम्मान और समायोजन करता हो।

ऐतिहासिक आख्यान:

भगवाकरण में अक्सर हिंदू सभ्यता की उपलब्धियों और योगदान पर जोर देने के लिए इतिहास की पुनर्व्याख्या शामिल होती है जबकि अन्य धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के योगदान को कम करके आंका जाता है या खारिज कर दिया जाता है। धर्मनिरपेक्षतावादी इतिहास का अधिक समावेशी और संतुलित प्रतिनिधित्व चाहते हैं जो भारत के अतीत की विविधता को स्वीकार करता हो।

नीति और शासन:

भगवाकरण शिक्षा, सांस्कृतिक संस्थानों और सामाजिक कल्याण से संबंधित नीतियों को प्रभावित करता है, कभी-कभी हिंदू-केंद्रित कथाओं या उपायों को बढ़ावा देता है जो अल्पसंख्यक समूहों को नुकसान पहुंचाते हैं। धर्मनिरपेक्षतावादी उन नीतियों के लिए तर्क देते हैं जो धार्मिक संबद्धता के बावजूद समानता और गैर-भेदभाव के सिद्धांतों को कायम रखती हैं।

अभिव्यक्ति और धर्म की स्वतंत्रता:

भगवाकरण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने और एक समरूप सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान को बढ़ावा देने के प्रयासों से जुड़ा हुआ है, जो व्यक्तियों के अपने धर्म का स्वतंत्र रूप से पालन करने के अधिकारों को कमजोर कर सकता है। धर्मनिरपेक्षतावादी सभी नागरिकों के लिए इन मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की वकालत करते हैं।

हिंदू राष्ट्रवाद और लोकतंत्र

हिंदू राष्ट्रवाद के विशिष्ट चरित्र को पूरी तरह से समझने के लिए, इसे उन्नीसवीं शताब्दी (ज़ावोस, 2000) के बाद से भारत में हुए राजनीतिक, सांस्कृतिक और कानूनी परिवर्तनों की लंबी श्रृंखला में रखा जाना चाहिए। यद्यपि भाजपा की राजनीतिक विजय ने एक वैचारिक शक्ति के रूप में हिंदू राष्ट्रवाद के खतरे को काफी हद तक बढ़ा दिया है, लेकिन इसका भाग्य भाजपा के भाग्य से कहीं अधिक है। यह चुनावी राजनीति में प्रकट हुए बिना भी

एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और राजनीतिक धारा बनी रह सकती है। इसका समेकन कई धागों का संयोजन है, जो एक दूसरे को सुदृढ़ करते हैं।

हिंदू राष्ट्रवाद लोकतंत्र की आंतरिक चुनौती का परिणाम है। सीधे शब्दों में कहें तो कहानी कुछ इस तरह है. 1857 के बाद, यह स्पष्ट हो गया कि भारत, धीरे-धीरे ही सही, किसी प्रकार की लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को अपनाने जा रहा है। पहली बार, भारत में मुस्लिम अभिजात वर्ग ने खुद को राजनीतिक शक्ति के बिना पाया। इसने भारत में मुस्लिम राजनीतिक पहचान के बारे में एक जटिल राजनीति को गति दी। लोकतंत्र में बहुमत और अल्पसंख्यक का ढाँचा ही राजनीतिक महत्व प्राप्त करता है। हम उन्नीसवीं सदी से पहले हिंदू और मुस्लिम राजनीतिक पहचान की प्रकृति पर बहस कर सकते हैं। लेकिन बहुत बुनियादी स्तर पर, एक बार जब अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की अवधारणा को बुनियादी वैचारिक ढांचे के रूप में स्वीकार कर लिया गया, तो मुसलमानों के साथ 'अल्पसंख्यक' के आदर्श मामले के रूप में एक हिंदू राजनीतिक पहचान लगभग परिभाषा के अनुसार बनाई गई है। 'धार्मिक अल्पसंख्यक' की परिभाषा केवल 'बहुसंख्यक' के विचार के विरुद्ध समझ में आती है जो अल्पसंख्यक के लिए संभावित राजनीतिक खतरा पैदा कर सकता है; दोनों अवधारणाओं ने एक-दूसरे का सह-निर्माण किया।

राजनीति का हर पहलू जिसने बहुसंख्यक/अल्पसंख्यक ढांचे के बाहर सोचने की कोशिश की, उसे हाशिये पर धकेल दिया गया। दो पहलू जो बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक ढांचे के संभावित विकल्प हो सकते थे। एक तो बस संवैधानिक गारंटी द्वारा संरक्षित सभी नागरिकों के लिए समान व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता के संदर्भ में सोचना था, जिसके लिए राजनीति में स्थायी बहुमत/अल्पसंख्यक ढांचे के संदर्भ में सोचने की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन यह धारा, जो एक उदार रूप ले सकती थी, को 'अल्पसंख्यक विरोधी' धारा के रूप में देखा गया, क्योंकि इसका उद्देश्य राजनीतिक उद्देश्यों के लिए समूह की पहचान के महत्व को खत्म करना था। ऐसा कहा जा सकता है कि इसने समूहों के बीच सत्ता के बंटवारे की समस्या को गंभीरता से नहीं लिया।

बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक ढांचे को भंग करने का दूसरा चरण 'अल्पसंख्यक' की धारणा का बहुलीकरण करना था। भारत में बहुत अधिक क्रॉस-कटिंग क्लीवेज हैं। यह वर्णनात्मक स्तर पर अल्पसंख्यकों का एक संग्रह है, यह उस पहचान पर निर्भर करता है जिसे आप विशेषाधिकार के लिए चुनते हैं, यह सच हो सकता है। लेकिन इस कदम की अपनी राजनीतिक सीमाएँ थीं। पहला यह कि जाति और क्षेत्र की दरारों को काटने का विचार कभी भी एक राजनीतिक श्रेणी के रूप में 'मुस्लिम' पहचान के महत्व को विस्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं माना गया था। 1940 के दशक तक यह स्पष्ट होता जा रहा था। विडंबना यह है कि तब भारत को अल्पसंख्यकों के समूह के रूप में देखने की कोशिश को हिंदू पहचान पर एक गुप्त हमले के रूप में देखा गया था; इस बात से इनकार करने का प्रयास कि बहुलता, क्रॉस कटिंग दरार, क्षेत्रीय और वैचारिक विविधताओं के बावजूद, हिंदू पहचान जैसी कोई चीज हो सकती है।

1857 से 1947 तक, लोकतंत्र की चुनौतियों में से एक प्रतिनिधि प्रक्रिया के माध्यम से हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सत्ता के बंटवारे के रूप में तैयार की गई थी, लेकिन समस्या यह थी कि प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया के माध्यम से सत्ता के बंटवारे की समस्या का कभी भी कोई संतुलन समाधान नहीं था। . यदि अल्पसंख्यकों को उनकी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया; या उन्हें 'वीटो' शक्तियां दे दी गईं, तो 'बहुमत' को दुख हुआ। यदि अल्पसंख्यकों को प्रभावी शक्ति प्रदान करने वाले तरीकों से प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया, शायद कुछ मुद्दों पर 'वीटो' भी नहीं दिया गया, तो वे अशक्त महसूस करेंगे। एक दुखद विडंबना यह है कि सत्ता साझेदारी पर बातचीत से दोनों समुदायों के राजनीतिक नेतृत्व के बीच दो तरह की दूरी कम होने के बजाय बढ़ती गई। इसने इस आधार को मजबूत किया कि समुदायों के कुछ विशिष्ट हित थे जिन्हें व्यक्तिगत अधिकारों और सामान्य नागरिकता की भाषा के माध्यम से पर्याप्त रूप से संरक्षित नहीं किया जा सकता था।

और यह संभवतः विश्वास कायम करने और समुदायों को एक-दूसरे के संबंध में प्रतिस्पर्धी गतिशीलता में लाने में विफल रहा। इसने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला कि 'साझा संस्कृति' पर जोर देना, एक ऐसी सभ्यता का उद्भव जिस पर सभी धर्मों की छाप थी, सत्ता साझा करने की वास्तविक राजनीतिक समस्या का मुकाबला करने के लिए काफी कमजोर संघर्ष था। साझा संस्कृति की अपील राजनीतिक सत्ता साझेदारी की समस्या का उत्तर नहीं हो सकती।

After partition, the question of power sharing between Hindus and Muslims through the formal प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया को एजेंडे से बाहर कर दिया गया। लेकिन अनौपचारिक तरीके से, चुनावी प्रक्रिया के दौरान बहस जारी रही। कांग्रेस की आत्म-छवि के लिए यह महत्वपूर्ण था कि उसे किसी भी कीमत पर मुस्लिम हितों के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाए। 2014 तक, यह लगभग विश्वास का एक लेख था कि दिल्ली में किसी भी सत्तारूढ़ व्यवस्था को या तो मुसलमानों के चुनावी समर्थन की आवश्यकता होगी, या उन पार्टियों की जो उनके हितों का जवाब देने का दावा करती हैं। कुछ अर्थों में, चुनावी प्रणाली का गणित वह माध्यम प्रदान करेगा जिसके द्वारा मुस्लिम हितों की रक्षा की जाएगी। भारतीय राजनीति की खंडित प्रकृति को देखते हुए, राजनीतिक गठबंधन मुसलमानों का चुनावी समर्थन हासिल करेंगे। इससे उस चीज़ का निर्माण हुआ जिसे 'चुनावी धर्मनिरपेक्षता' कहा जा सकता है, जहां पार्टियों को मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने या उन्हें सशक्त बनाने के बारे में कोई विशेष चिंता नहीं थी, लेकिन उन्हें चुनावी गठबंधन बनाने की ज़रूरत थी। इस प्रकार की न्यूनतम राजनीतिक प्रतिक्रिया मुसलमानों के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हाशिए पर जाने के साथ काफी अनुकूल थी। कांग्रेस, धर्मनिरपेक्ष पार्टियाँ और भारतीय राज्य जनस का सामना कर रहे थे। एक ओर, वे मुसलमानों के प्रति प्रतीकात्मक रूप से आग्रहपूर्ण थे, चुनिंदा रूप से उन लाभों को निर्देशित करके जो उनकी पहचान के हितों की रक्षा करते थे: अल्पसंख्यकों को कुछ प्रकार की लक्षित हिंसा से बचाना, व्यक्तिगत कानूनों की न्यायिक जांच को पलटना, या उदाहरण के लिए सलमान रुश्दी के सैटेनिक वर्सेज को प्रसारित होने से रोकना। दूसरी ओर, वही पार्टियाँ स्थानीय स्तर पर लक्षित सांप्रदायिक हिंसा से भी चुनिंदा लाभ उठा सकती हैं, अक्सर इस संदेश को मजबूत करने के लिए कि मुसलमान कानून के शासन पर भरोसा नहीं कर सकते, बल्कि उन्हें राज्य की विवेकाधीन सुरक्षा की आवश्यकता है।

इससे एक दुष्चक्र पैदा हो गया: जितना कम मुसलमान सार्वजनिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन को अपने जीवन के रूप में स्वीकार कर सके, उतना ही वे सशक्तिकरण संकेतकों की एक श्रृंखला में अन्य समुदायों से पीछे रह गए। परन्तु जितना अधिक वे पीछे पड़ते गए, और अलग-थलग होते गए, उतना ही अधिक इसका प्रयोग उनके विरुद्ध एक संकेत के रूप में किया जाने लगा; जब भारत की आधुनिकता में एकीकृत होने की बात आई तो उन्हें एक ऐसे समुदाय के रूप में देखा गया जो बिल्कुल असहयोगी था। मुसलमानों के मामले में, राज्य के संसाधन, जब उन्हें उनकी ओर निर्देशित किया गया था, तो उनका उद्देश्य एक विशिष्ट अल्पसंख्यक के रूप में उनकी स्थिति को सुदृढ़ करना था, न कि उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में पूरी तरह से सशक्त बनाना। मुसलमान एक ऐसी दुविधा में फंसे रहे जो उनकी खुद की बनाई हुई नहीं थी। जितना अधिक मुस्लिम नेतृत्व (जो अपनी राजनीतिक कल्पना की कमी के कारण उन लोगों को उपकृत करने के लिए तैयार था जो उन्हें एक याचक अल्पसंख्यक के रूप में तैयार कर रहे थे), अल्पसंख्यक के रूप में उनकी स्थिति पर जोर दिया, उतना ही अधिक बहुसंख्यक प्रतिक्रिया के लिए स्थितियां बनाई गईं। दूसरी ओर, व्यापक राजनीतिक संस्कृति व्यापक समाज में मुस्लिम एकीकरण को रोकने की पूरी कोशिश कर रही थी, साथ ही वह इसकी मांग भी कर रही थी। यह विवरण एक सरलीकरण है, जो भारत में मुस्लिम राजनीति की जटिल वास्तविकताओं को अस्पष्ट करता है। लेकिन इसका शुद्ध परिणाम यह हुआ कि भारतीय राजनीति में बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक ढांचा और भी मजबूती से मजबूत हो गया (जटिलता के शानदार विवरणों के लिए, संभवतः एक महत्वपूर्ण मुस्लिम राजनीतिक अभिजात वर्ग के पाकिस्तान चले जाने के कारण, आम संस्थानों में दोनों समुदायों के बीच अभिजात्य स्तर की

बातचीत संभवतः कम हो गई थी) विभाजन-पूर्व भारत की तुलना में 70 और 80 के दशक में तो और भी कम। मन के विभाजन भी गहरी समाजशास्त्रीय वास्तविकताएं बन रहे थे, जिससे हिंदू राष्ट्रवादियों को 'मुस्लिम' को एक अमूर्त व्यक्ति, संदेह की वस्तु के रूप में बनाने की अनुमति मिल रही थी। हिंदू राष्ट्रवाद की गहरी जड़ें वे भाजपा की प्रत्यक्ष विजय में नहीं थे, बल्कि बहुसंख्यक/अल्पसंख्यक ढाँचे को मजबूत करने की गुप्त प्रतिबद्धता में थे।

इस जमीनी कार्य के साथ, यह केवल उस समय की बात है जब राजनीतिक व्यवस्था में पार्टियों ने निर्णय लिया कि मुसलमानों को चुनावी रूप से त्याग दिया जा सकता है। निर्णायक स्थिति तब आई जब भाजपा ने फैसला किया कि मुस्लिम वोटों या उनका समर्थन करने वाली पार्टियों पर भरोसा किए बिना चुनावी बहुमत हासिल किया जाए। या अधिक दृढ़ता से, अल्पसंख्यकों या उनका समर्थन करने वाली पार्टियों के समर्थन की आवश्यकता को अस्वीकार करने से वास्तव में बहुसंख्यक वोट को मजबूत करने में मदद मिल सकती है। मुसलमानों को भारतीय राजनीति पर वीटो का अधिकार दे दिया गया था। अब काम उन्हें 'अप्रासंगिक' बनाने का था। इस तरह बीजेपी में खींचतान मच गई. चुनावी धर्मनिरपेक्षता के लिए अब कोई बाध्यता नहीं रह गई थी।

संविधान की वर्तमान स्थिति

भारतीय संविधान की 7वीं अनुसूची धार्मिक संस्थानों, दान और ट्रस्टों को समवर्ती सूची में रखती है, जिसका अर्थ है कि भारत की केंद्र सरकार और भारत में विभिन्न राज्य सरकारें धार्मिक संस्थानों, दान और ट्रस्टों के बारे में अपने स्वयं के कानून बना सकती हैं। यदि केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए कानून और राज्य सरकार के कानून के बीच कोई टकराव होता है, तो केंद्र सरकार का कानून प्रभावी होता है। भारत में धर्म और राज्य को अलग करने के बजाय ओवरलैप के इस सिद्धांत को 1956 में अनुच्छेद 290 से शुरू होने वाले संवैधानिक संशोधनों की एक श्रृंखला में मान्यता दी गई थी, जिसमें 1975 में भारतीय संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ा गया था। व्यक्तिगत मामले में कानून, जैसे कि लड़कियों के लिए विवाह की स्वीकार्य आयु, महिला खतना, बहुविवाह, तलाक और विरासत, भारत का कानून प्रत्येक धार्मिक समूह को अपने धार्मिक कानून को लागू करने की अनुमति देता है यदि धर्म ऐसा आदेश देता है, अन्यथा राज्य कानून लागू होते हैं। महत्वपूर्ण आबादी वाले भारत के धर्मों के संदर्भ में, केवल इस्लाम में शरिया के रूप में कानून हैं जिन्हें भारत मुस्लिम पर्सनल लॉ के रूप में अनुमति देता है। इस प्रकार, भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म को राज्य से अलग करना नहीं है। इसके बजाय, भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ एक ऐसा राज्य है जो सभी धार्मिक समूहों के मामलों में तटस्थ तरीके से समर्थन करता है या भाग लेता है। व्यक्तिगत क्षेत्र में धार्मिक कानून, विशेष रूप से मुस्लिम भारतीयों के लिए, भारत में संसदीय कानूनों का स्थान लेते हैं, और वर्तमान में कुछ निश्चित स्थितियों में, उदाहरण के लिए धार्मिक शिक्षण स्कूल, राज्य कुछ धार्मिक स्कूलों को आंशिक रूप से वित्तपोषित करता है। साथ ही, भारत सरकार इस्लामिक केंद्रीय वक्फ परिषद, ऐतिहासिक हिंदू मंदिरों, बौद्ध मठों और कुछ ईसाई धार्मिक संस्थानों का वित्तीय प्रबंधन भी कर रही है।

सांप्रदायिक मौत

हाल के दिनों में जो बात सार्वजनिक हुई है वह भारत में मानवाधिकारों पर अमेरिकी विदेश विभाग की रिपोर्ट है। स्पष्ट रूप से, संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित कई संगठन भी ऐसी रिपोर्ट जारी करते हैं, लेकिन वे राज्य की नीतियों पर बाध्यकारी नहीं हैं। कुछ अमेरिकी राष्ट्रपतियों ने विश्व स्तर पर मानवाधिकारों को बढ़ावा देने की बात की है - लेकिन यह अप्रभावी रूप से है। कुल मिलाकर, अमेरिकी विदेश नीति मानवाधिकारों के विचारों से निर्देशित नहीं होती है। कुछ बेहद गंभीर मामलों में वे कार्रवाई करते हैं, जैसे वीज़ा देने से इनकार करना, लेकिन ये अपवाद हैं। इसके अलावा, संयुक्त राज्य अमेरिका स्वयं विभिन्न अधिकारों के उल्लंघन में

लिप्त है, अबू ग़रीब जेल यातनाएं और ग्वांतानामो बे दुर्व्यवहार सबसे ज्वलंत सबूत हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्य विभाग के अंतर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतंत्रता कार्यालय ने 10 जून को जारी अपनी 2019 रिपोर्ट में धार्मिक स्वतंत्रता के उल्लंघन पर प्रकाश डाला है। यह भारतीय अल्पसंख्यकों पर व्यापक और व्यवस्थित रिपोर्टिंग से भरा है और इसमें भारत में अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों, ईसाइयों और दलितों के सामने आने वाली चुनौतियों का गहन विश्लेषण है। मुख्य आकर्षण यह है कि इसने धार्मिक रूप से प्रेरित हत्याओं, हमलों, भेदभाव और बर्बरता पर ध्यान दिया है। इसमें भारतीय गृह मंत्रालय के आंकड़ों का भी हवाला दिया गया है, जिसमें 2008-17 के दौरान सांप्रदायिक हिंसा की 7,484 घटनाएं दर्ज हैं, जिनमें 1,100 से अधिक लोग मारे गए थे। रिपोर्ट में मुसलमानों, ईसाइयों और दलितों की भयावह लिंचिंग के उदाहरणों का हवाला दिया गया है। "हालाँकि लिंचिंग अपने आप में नृशंस है, अंतरराष्ट्रीय समुदाय को जिस चीज़ से चिंतित और कार्रवाई करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, वह लगातार जारी भड़काऊ बयानबाजी है जो अब मुख्यधारा के प्रवचन का हिस्सा है," नतीजतन, इसका आकलन कैसे किया जाए, इस पर बहुत बड़े मतभेद हैं ये रिपोर्टें और निगरानी समूहों की भूमिका। इन रिपोर्टों से जो हासिल होता है वह यह है कि वे उन देशों के लिए एक दर्पण हैं जिनसे वे चिंतित हैं। उनकी रिपोर्ट मानवाधिकार रक्षकों की मदद और मार्गदर्शन करती है और उनके काम को दिशा देती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश विभाग की एक टीम इस मुद्दे को गहराई से समझने के लिए भारत का दौरा करना चाहती थी, लेकिन उसे इस आधार पर वीजा देने से इनकार कर दिया गया कि भारत बाहरी टिप्पणियों से निर्देशित नहीं होता है। वैश्वीकरण की दुनिया में यह एक कठिन आह्वान है, एक परिवर्तन जिसे लगातार भारतीय सरकारों ने विरोध के बावजूद, राज्य की नीति के रूप में दृढ़ता से अपनाया है। सवाल यह है कि क्या हम अपने गंदे लिनन को कालीन के नीचे छिपा सकते हैं और कितने समय तक? आख़िरकार, ऐसा नहीं है कि कोई भी भारतीय संस्थान वास्तविकता से अवगत नहीं है। दरअसल, भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने जुलाई 2018 में एक आदेश में भीड़ की हिंसा की निंदा की है और राज्यों से इस खतरे को रोकने और दंडित करने के लिए कानून बनाने को कहा है, जिसका कुछ राज्यों ने अनुपालन किया है। मुद्दा यह है कि अगर हमारे पास छिपाने के लिए कुछ नहीं है तो हमें किसी भी संगठन के सभी प्रयासों का स्वागत करना चाहिए और उनके अनुभवों और सुझावों से सीखना चाहिए। अंततः, धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन संविधान के विरुद्ध है, जो इस स्वतंत्रता की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य बनाता है। समस्या यह है कि सांप्रदायिकता बढ़ने के साथ, जो लोग धार्मिक अल्पसंख्यकों को परेशान करना चाहते हैं और दूसरों के धर्म की स्वतंत्रता का उल्लंघन करते हैं, उन्हें बड़ी छूट मिलती है। भारत को एक मानवीय समाज की आवश्यकता है जो न केवल सहन करे बल्कि विविधता का जश्न भी मनाए, जो हमारे स्वतंत्रता आंदोलन की मूल ताकत थी।

अयोध्या फैसला

फैसले के बारे में हम सभी जानते हैं कि 'हिंदुओं' ने 'स्थल' को अपने कब्जे में ले लिया और 'मुसलमानों को पांच एकड़ जमीन इसलिए नहीं दी कि वे बहुसंख्यक हैं और न ही अल्पसंख्यक हैं, बल्कि इसलिए कि शीर्ष अदालत स्पष्ट रूप से 'वास्तविक पूजा' के साक्ष्य पर विश्वास करती है। सदियों से नीचे'। आइए कानून के गुणों के साथ चलते हैं, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के अनुसार प्रतिकूल स्थिति क्या है, यह कहता है कि प्रतिकूल कब्ज़ा, किसी व्यक्ति द्वारा संपत्ति का कब्ज़ा है जो हर दूसरे व्यक्ति के लिए प्रतिकूल है, या कब्जे के अधिकार का दावा करता है एक अलग शीर्षक के आधार पर. एक बार जब व्यक्ति द्वारा गलत तरीकों के बावजूद प्रतिकूल कब्ज़ा साबित हो जाता है, तो वास्तविक मालिक भूमि/संपत्ति पर अपना अधिकार खो देता है। तो, बाबर की मस्जिद जो 500 साल पहले बनी थी और जो अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है, कुछ मुस्लिम विरोधियों द्वारा एक रात में ध्वस्त कर दी गई। बाद में, अदालत ने यह माना कि कुछ पुरातात्विक साक्ष्य थे जो साबित करते हैं कि कुछ संस्कृति का अस्तित्व था और वह न तो इस्लामी और न ही हिंदू संस्कृति है। यह मुद्दा दो दशकों से अधिक समय से हर समुदाय की शांति को नष्ट कर रहा है। और अंत में

फैसला इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 'मस्जिद के निर्माण से पहले और बाद में हिंदुओं की आस्था और विश्वास हमेशा यही रहा है कि भगवान राम का जन्मस्थान ही वह स्थान है जहां बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया है, जो कि दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों से साबित होता है।' शीर्ष अदालत ने 'समानता' के नाम पर सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड को स्थल के पास या 'अयोध्या में उपयुक्त स्थान' पर पांच एकड़ अधिग्रहित भूमि दी। यहां, मैं प्रतिकूल स्थिति के अनुसार भूमि के कानूनी गुण का गंभीर रूप से विश्लेषण करने जा रहा हूं यदि भूमि मालिक के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के स्वामित्व में है तो कानून स्वयं उसे मालिक होने का कानूनी दर्जा देता है। तो फिर बाबरी मस्जिद को मालिकाना हक की कानूनी मान्यता क्यों खारिज की जाती है. उनका कहना है कि फैसला समानता के आधार पर दिया जाता है, अगर यह निष्पक्ष फैसला है तो जमीन दोनों में से किसी को नहीं दी जानी चाहिए। दोनों पक्षों को अलग-अलग ज़मीन दी जानी चाहिए और विवादित ज़मीन सरकार को लेनी चाहिए, सरकार इसे किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग कर सकती है। पूरा देश चिल्ला उठता कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है. अत: भगवाकरण का सिद्धांत अयोध्या फैसले से सिद्ध होता है।

निष्कर्ष

भारत में भगवाकरण और धर्मनिरपेक्षता के बीच टकराव सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और संवैधानिक मूल्यों के बीच जटिल अंतरसंबंध को रेखांकित करता है। जबकि भगवाकरण भारत की हिंदू-केंद्रित दृष्टि की वकालत करता है, संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता समानता, बहुलवाद और सभी नागरिकों के लिए धार्मिक स्वतंत्रता की सुरक्षा को बढ़ावा देती है। चुनौती एक लोकतांत्रिक और बहुलवादी समाज के ढांचे के भीतर इन भिन्न विचारधाराओं को समेटने में है। इस संतुलन को हासिल करने के लिए धर्मनिरपेक्ष शासन और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को कायम रखते हुए सभी समुदायों के अधिकारों और पहचान का सम्मान करना आवश्यक है। अंततः, इस तनाव से निपटने की भारत की क्षमता उसके लोकतंत्र की समावेशिता और जीवंतता को निर्धारित करेगी, जिससे यह सुनिश्चित होगा कि यह अपनी सांस्कृतिक विविधता की समृद्ध टेपेस्ट्री को अपनाते हुए अपने संवैधानिक मूल्यों के प्रति सच्चा बना रहे।

संदर्भ

[1] अहमद, ए. (2019)। "कश्मीर और अनुच्छेद 370 का हनन: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य", फ्यूचर डायरेक्शन्स इंटरनेशनल, विश्लेषण और नीति वेधशाला वेबसाइट से पुनर्प्राप्त: https://apo.org.au/node/254391 (पुनर्प्राप्त: 2020-02-01)

[2] भारद्वाज, ए. (2017, 24 जुलाई) "दीना नाथ बत्रा फिर से: वह स्कूल की किताबों से टैगोर, उर्दू शब्द चाहते हैं" द इंडियन एक्सप्रेस https:// Indianexpress.com/article/india/dina-nath-batraagain-he-wants -टैगोर-उर्दू-शब्द-ऑफ-स्कूल-पाठ-4764094/ (पुनः प्राप्त: 2019-05-15)

[3] दत्ता, पी.के. (2018, 20 अप्रैल) नरोदा पाटिया मामला: 16 वर्षों में 2 फैसलों में माया कोडनानी की किस्मत कैसे बदल गई, इंडिया टुडे, यहां से प्राप्त: https://www.indiatoday.in/india/story/naroda-patiya-massacre -कैसे-माया-कोडनानी-की-किस्मत-16 साल में 2-फैसले-से-बदल गई-1216416-2018-04-20 (पुनर्प्राप्त: 2019-05-10)

[4] चौहान, एम. (2010)। सरस्वती शिशु मंदिर स्कूल में धार्मिक कथा के माध्यम से लिंग निर्माण। भारतीय इतिहास कांग्रेस की कार्यवाही, 71, 1189-1195।

[5] चौहान, एम. (2013)। पितृसत्तात्मक शासन में समाजीकरण: सरस्वती शिशु मंदिर स्कूल की पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण। भारतीय इतिहास कांग्रेस की कार्यवाही, 74, 988-992।

[6] दासगुप्ता, पी. (2018, 13 जून)। उपचुनाव में हार के बाद बीजेपी उत्तर प्रदेश में अपनी आईटी सेल के लिए 2 लाख 'साइबर सेना' को ट्रेनिंग दे रही है। हफ़िंगटन पोस्ट।

https://www.huffingtonpost.in/2018/06/13/after-bypoll-lossesbjp-is-training-2-lakh-cyber-sena-for-its-it- cell-in-uttar-praदेश_a_23457592/

[7] दीक्षित, एन. (2013, 18 जनवरी)। गाय से भी पवित्र: राष्ट्र सेविका संघ शिविर की महिलाओं पर ज्ञान। आउटलुक इंडिया। https://www.outlookindia.com/magazine/story/holier-than-cow/283593